जनसत्ता

नफरत का दायरा

उम्मीद की गई थी कि दुनिया में जैसे-जैसे विज्ञान और तकनीक के साथ-साथ आधुनिक वैज्ञानिक सोच का विकास और विस्तार होगा, वैसे-वैसे अलग-अलग मत को मानने वालों के बीच पसरी संकीर्णताओं की दीवारें टूटेंगी और इंसानी समाज ज्यादा सभ्य और संवेदनशील बनेगा। लेकिन इससे बड़ी विडंबना क्या होगी कि एक ओर दुनिया की उत्पत्ति के रहस्यों की खोज में बड़ी कामयाबियां दर्ज की जा रही हैं, विज्ञान नई ऊंचाइयां हासिल कर रहा है और दूसरी ओर विश्व भर में समाज का एक बड़ा हिस्सा प्रतिगामी दिख रहा है। हर अगले दिन विकास के मायने जहां ये होने चाहिए थे कि तकनीकी उपलब्धियों के समांतर हमारा समाज भी ज्यादा सभ्य, संवेदनशील और मानवीय बने, वहां कई बार ऐसा लगता है कि मनुष्य के बीच दूरी पैदा करने वाले विचारों की जड़ें अभी भी काफी मजबूत हैं और तकनीकी उपलब्धियों को नफरत या हिंसा फैलाने का जरिया बना लिया गया है।

हाल के वर्षों में दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में अनेक धर्मों की पहचान के साथ जुड़े समूहों की गतिविधियां जिस तरह की नफरत और उस पर आधारित हिंसा के रूप में सामने आ रही हैं, वह समूचे मानव-समाज के लिए बेहद चिंता की बात हैं। शायद यही वजह है कि लगातार गहराता यह मसला अब संयुक्त राष्ट्र की चिंता में भी शुमार हुआ है। सोमवार को संयुक्त राष्ट्र प्रमुख एंतोनियो गुतारेस ने साफ तौर पर कहा कि पूरी दुनिया में हम देख रहे हैं कि असहिष्णुता और विभिन्न पंथों के अनुयायियों के खिलाफ घृणा आधारित हिंसा बढ़ रही है और यह जहर हर उस व्यक्ति के खिलाफ है, जिसे 'दूसरा' समझा जाता है। उन्होंने आगाह किया कि इंटरनेट का कुछ हिस्सा 'घृणा का हॉटहाउस' बनता जा रहा है। सवाल है कि सामाजिक विकास के क्रम में हमें जहां ज्यादा से ज्यादा सभ्य और संवेदनशील बन कर अपने बीच इंसानियत के मूल्यों को मजबूत करना चाहिए था, वहां हमारे समाज में यह हालत कैसे हो गई?

गौरतलब है कि हाल ही में श्रीलंका में गिरजाघर सहित कई जगहों पर हुए सिलसिलेवार आतंकी बम विस्फोटों में ढाई सौ से ज्यादा लोगों की जान चली गई। इससे कुछ दिन पहले न्यूजीलैंड में एक मस्जिद पर हुए आतंकी हमले में करीब पचास लोग मारे गए। इसके अलावा भी गिरजाघरों में इसाइयों की हत्या, सिनेगॉग यानी यहूदी प्रार्थना-गृहों में यहूदियों का कत्ल, मस्जिद में मुसलमानों को मार डाला जाना, धार्मिक स्थलों में तोड़फोड़ जैसी घटनाएं हाल के दिनों में ज्यादा होने लगी हैं। भारत में भी एक समुदाय विशेष के प्रति ऐसे दुराग्रह उभरते देखे जा सकते हैं। नफरत के स्तर का अंदाजा इससे लगाया जा सकता है कि यहूदियों की कब्रों पर स्वस्तिक का निशान बना दिया जा रहा है, जो एक समय में जर्मनी में हिटलर और उसकी नाजी पार्टी का प्रिय निशान था। एक समय में नाजीवाद से मुक्ति के लिए दुनिया के बहुत सारे देशों को एक मोर्चा बनाना पड़ा था, ताकि नफरत और हिंसा के विचार से मुक्त एक मानवीय संवेदनाओं वाला समाज बनाया जा सके। लेकिन दूसरे विश्वयुद्ध में नाजीवाद को हराने के आठ दशक बाद भी दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में धर्म या नस्ल के नाम पर नफरत और हिंसा अगर एक प्रवृत्ति के रूप में हमारे सामने हैं तो यह ठहर कर सोचने का वक्त है कि हमारे बीच इंसानियत और अपनापे के विचार की जगह क्यों सिकुड़ती गई है। दुनिया को तो हम सब यही बताते हैं कि हमारा धर्म या मत सबसे ज्यादा मानवीय है। तो आखिर इसी बीच किसी भी 'दूसरे' कहे जाने वाले धर्म और मत के लोगों के प्रति उस असहिष्णुता और नफरत का विकास कैसे हुआ, जो अमानवीयता और हिंसा के सहारे जिंदा रहना चाहता है?

आपदा के वक्त

प्राकृतिक आपदा को रोकना मनुष्य के वश की बात नहीं। बस उससे होने वाले नुकसान से बचने के एहतियाती उपाय किए जा सकते हैं। आधुनिक तकनीक और संचार माध्यमों से एक सुविधा यह जरूर हुई है कि आपदा का पूर्व अनुमान लगाना संभव हो गया है। इससे समय रहते लोगों को सावधान रहने और आपदा प्रबंधन की तैयारी में मदद मिली है। चक्रवाती तूफान फानी से पार पाने के लिए ऐसी तैयारी पूरी दिख रही है। बंगाल की खाड़ी में करीब दो सौ किलोमीटर प्रति घंटा की रफ्तार से चल रही हवाओं ने चक्रवाती तूफान का रूप ले लिया। इससे भारत के पूर्वी तट को भारी नुकसान पहुंचने की आशंका जताई गई। इसलिए पश्चिम बंगाल, ओड़ीशा, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु आदि राज्यों में अतिरिक्त सतर्कता बरतने के निर्देश दे दिए गए। आपदा प्रबंधन की तमाम तैयारियां कर ली गईं। इस तूफान के अधिक प्रभाव में आने वाले क्षेत्रों में आपदा प्रबंधन के लिए निर्वाचन अयोग ने आदर्श आचार संहिता में छूट भी दे दी। इस तरह लोगों को जान के खतरे से बचाने के लिए सराहनीय तैयारियां की गई हैं। मगर इससे संपत्ति और प्राकृतिक संसाधनों को पहुंचने वाले नुकसान को कितना रोका जा सकेगा, अभी दावा नहीं किया जा सकता।

जिन इलाकों में फानी से भारी नुकसान का अनुमान है, वहां तो एहतियाती तैयारियां कर ली गई हैं, पर ऐसी आपदाओं का दायरा बहुत विस्तृत होता है। इसका असर दूसरे समीपवर्ती राज्यों पर भी पड़ता है। यह फसल कटने का मौसम है। बहुत सारे किसानों ने अपनी फसलें काट कर खेतों में उनके ढेर लगा रखे हैं। बहुत सारे लोगों ने अनाज की मड़ाई करके बाहर छोड़ रखा है। अभी काफी खेत कटने को हैं। ऐसे में बारिश आने से फसलों को भारी नुकसान पहुंचेगा। यह लगभग हर साल का सिलसिला बन चुका है कि जब किसान फसल काट कर रखता है या फसल कटने को होती है तो मौसम का मिजाज करवट लेता है और किसान की सारी मेहनत पर पानी फेर जाता है। बहुत सारा अनाज बारिश की वजह से सड़ जाता है। फिर ऐसे तूफान से समुद्री इलाकों में बने भवनों, बाग-बगीचों, खेतों, रिहाइशी बस्तियों, मछुआरों के रोजगार को भारी चोट पहुंचती है। पुरी के जिस समुद्र तट पर फानी के टकराने का अनुमान है, वह वैसे भी उग्र है और उसमें उठा उफान कितना नुकसान पहुंचाएगा, अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

प्रकृति का कोप कोई नई बात नहीं है, पर पिछले कुछ सालों में ऐसी आपदाएं अधिक उग्र और थोड़े-थोड़े अंतराल पर दिखने लगी हैं, तो इसकी कुछ वजहें साफ हैं। जलवायु परिवर्तन की वजह से हवाओं का चक्र गड़बड़ हो गया है। इसकी वजह से बेमौसम बारिश और तूफान उठ खड़े होते हैं। पिछले कई सालों से जोर दिया जा रहा है कि दुनिया के सारे देश, खासकर विकसित देश अपने कार्बन उत्सर्जन में कमी लाएं। प्राकृतिक संसाधनों के अतार्किक दोहन पर विराम लगाएं। मगर आर्थिक उन्नति के इस प्रतिस्पर्धी समय में कोई भी अपनी औद्योगिक गतिविधियों को नियंत्रित नहीं करना चाहता। बड़े-बड़े कल-कारखाने लगाने और नदियों, पहाड़ों, जंगलों की चिंता किए बगैर सड़कों और रिहाइशी कॉलोनियां, बाजार बसाने की जैसे होड़ लगी हुई है। ऐसे में प्राकृतिक आपदा से होने वाले नुकसान से बचने के फौरी इंतजाम तो हम कर लेते हैं, पर आपदा को रोकने के इंतजाम करने में नाकाम साबित हो रहे हैं। जब तक इस दिशा में नहीं सोचा जाता, संकट से पार पाना कठिन बना रहेगा।

कल्पमेधा

जो किसी बेहूदा और बदमिजाज आदमी को नसीहत देता है, उसे खुद नसीहत की जरूरत है।
-शेख शादी

मोर्चे पर महिलाओं को मौका

योगेश कुमार गोयल

काफी पहले एक पिछड़े जमाने में अगर युद्ध क्षेत्र में कपड़े बदलने या गर्भवती होने या फिर पुरुष सैनिकों द्वारा उनका नेतृत्व स्वीकार करने जैसे सवालों से परे रह कर महिला वीरांगनाएं अपनी वीरता और युद्ध कौशल से हर किसी को हतप्रभ करती रहीं और अपने अदम्य साहस की मिसाल पेश करती रहीं तो क्या आज की महिलाओं में उस साहस या कौशल की कोई कमी है? अगर नहीं, तो फिर क्यों उनका नेतृत्व स्वीकारने या मातृत्व अवकाश जैसी बातों को बेवजह तूल दिया जाता है?

भारतीय सेना में महिलाओं की भागीदारी, बहुत कम संख्या और महत्त्वपूर्ण अभियानों में उनकी नगण्य भूमिका को लेकर लंबे समय से बहस चलती रही है। मगर हाल ही में भारतीय सेना में 'महिला सैनिक भर्ती' के लिए ऑनलाइन पंजीकरण की शुरुआत के साथ ही सेना में बतौर सैनिक कॅरियर बनाने की इच्छुक महिलाओं के लिए द्वार खोल दिए गए हैं। हालांकि शुरुआती चरण में सिर्फ सौ पदों के लिए भर्ती की जा रही है, लेकिन खबरों के मुताबिक भविष्य के लिए सेना में जवानों के रूप में महिलाओं की श्रेणीबद्ध तरीके से भर्ती की जाएगी, जिनकी भूमिका अपराध के मामलों की जांच करने से लेकर सेना के संचालन में सहायता करने तक होगी। जवानों के रूप में सेना में भर्ती की शुरुआत करने के साथ यह भी स्पष्ट किया गया है कि भारतीय सेना में अब महिलाओं की संख्या बीस फीसद होगी। ये महिलाएं सेना की मदद के साथ ही बलात्कार, छेड़छाड़ जैसे मामलों की जांच करेंगी। सेना पुलिस की भूमिका सैन्य क्षेत्रों के भीतर पुलिस कार्य की होती है। इन जवानों को सैनिक की तरह प्रशिक्षण तो दिया जाता है, मगर इन्हें युद्ध क्षेत्र में नहीं भेजा जाता।

सन 1990 के दशक में महिलाओं ने सेना में जाना शुरू किया था, लेकिन करीब तीन दशक बाद भी अगर सेना में उनकी संख्या देखें तो हैरानी होती है। फिलहाल चौदह लाख सशस्त्र बलों के पैंसठ हजार अधिकारियों की फौज में वायुसेना में 1610, थल सेना में 1561 और नौसेना में 489 महिलाएं ही हैं। दरअसल, अभी तक सेना में महिलाओं को सिर्फ अधिकारियों के रूप में शामिल किया जाता रहा है और उनकी भर्ती चिकित्सा, कानूनी, शैक्षिक, सिग्नल, इंजीनियरिंग जैसे क्षेत्रों में होती रही है, जिनकी जिम्मेदारी सैनिकों द्वारा नियमों और विनियमों के उल्लंघन को रोकना, सैनिकों के साथ शांति और युद्ध के दौरान रसद को बनाए रखना, युद्धबंदियों को संभालना और आम पुलिस को सहायता पहुंचाना आदि रही है। शॉर्ट सर्विस कमीशन के तहत चुनी जाने वाली महिला अधिकारी सेना में चौदह-पंद्रह साल तक ही अपनी सेवाएं दे पाती हैं। ऐसी महिला अधिकारियों की संख्या नगण्य ही रही है, जो स्थायी कमीशन में जगह बना पाती हैं।

जहां तक युद्ध ऑपरेशनों की बात है तो दुनिया के कई समृद्ध देशों में युद्ध ऑपरेशनों में भी महिलाओं की अच्छी-खासी भागीदारी रहती है। अमेरिका में तो न्यूक्लियर मिसाइल सबमरीन्स पर भी महिलाओं की नियुक्ति होती है और मलेशिया, श्रीलंका, बांग्लादेश जैसे देश युद्ध में अपनी महिला सैनिकों को भी भेजते हैं। मगर हमारे यहां युद्ध अभियानों से महिलाओं को दूर रखा जाता रहा है। हमारी वायुसेना की महिला अधिकरियों को हेलिकॉप्टर और भारवाहक हवाई जहाज उड़ाने की ही अनुमति है और प्रायोगिक तौर पर उन्हें लड़ाकू जेट उड़ाने की भी अनुमति मिली है। वायुसेना में इस समय करीब सौ महिला पायलट हैं, लेकिन युद्ध क्षेत्र, सबमरीन और संकटग्रस्ट क्षेत्रों में उनकी नियुक्ति का अभी तक कोई प्रावधान नहीं है।

अगर विदेशी सेनाओं के मुकाबले भारतीय सेना में महिलाओं के प्रतिनिधित्व की बात की जाए तो हम इस मामले में बहुत पीछे हैं। हालांकि अब सेना में महिलाओं का प्रतिनिधित्व बीस फीसद करने का निर्णय लिया गया है, उसका स्वागत किया जाना चाहिए। विदेशी सेनाओं में महिलाओं की संख्या पर नजर डालें तो चीनी सेना में करीब ढाई लाख महिला सैनिक हैं, जिनमें से डेढ़ लाख सशस्त्र बलों का हिस्सा हैं। अमेरिका में 1775 से ही महिलाएं सेना में शामिल होती रही हैं और फिलहाल वहां की सेना में करीब दो लाख महिला सैनिक हैं। करीब चार साल पहले वहां सेना में महिलाओं को युद्ध में शामिल होने की अनुमति भी मिल गई। फ्रांस में भी सन 1800 से ही महिलाएं सेना में शामिल हैं। इजराइल की महिला सैनिक दुनिया की सर्वाधिक खतरनाक महिला सैनिक मानी जाती हैं। वहां सेना में पुरुष और महिला सैनिकों की संख्या लगभग बराबर है। रूसी सेना में भी करीब दो लाख महिला सैनिक हैं। इन देशों के अलावा ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, यूनान, यूक्रेन, चेक गणराज्य, पोलैंड, पाकिस्तान, रोमानिया आदि में भी महिलाएं सेना का हिस्सा बन कर लड़ाकू और प्रशासनिक, दोनों प्रकार की भूमिकाएं बखूबी निभा रही हैं।

दरअसल, भारतीय सेना में महिलाओं की संख्या बेहद सीमित रहने और बतौर सैनिक तैनाती न किए जाने को लेकर हमारी पुरुष मानसिकता काफी हद तक जिम्मेदार रही है। इसका अनुमान कुछ जिम्मेदार पदों बैठे लोगों के विचार से भी लगाया जा सकता है कि भारतीय सेना के अधिकतर जवान गांवों से आते हैं और वे महिला अधिकारियों का नेतृत्व स्वीकार करने को अभी तैयार नहीं हैं। यह भी कहा गया था कि अगर किसी युद्ध क्षेत्र में महिला को कमांड दी गई और उस दौरान अगर वे मातृत्व अवकाश मांगती हैं, तो क्या होगा? अगर महिला कमांडर के नेतृत्व में एक टुकड़ी लंबे ट्रैक पर जा रही है तो महिला अफसर के सोने का अलग से बंदोबस्त करना होगा और उनके कपड़े बदलने के लिए किसी जगह को घेर कर तैयार करना होगा।

इस प्रकार की मानसिकता के दायरे में भारतीय सेना को बांधते समय हम यह क्यों भूल जाते हैं कि हमारा इतिहास महिला वीरांगनाओं के युद्ध कौशल से भरा पड़ा था। झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, चित्तूर की रानी चेनम्मा, चांद बीबी, गोंड की रानी दुर्गावती, झलकारी बाई, उदादेवी पासी आदि अनेक ऐसी ही महिला वीर योद्धाओं ने इसी धरा पर जन्म लेकर युद्ध के मोर्चे पर वीरता की सुनहरी इबारतें लिखी हैं। काफी पहले एक पिछड़े जमाने में अगर युद्ध क्षेत्र में कपड़े बदलने या गर्भवती होने या फिर पुरुष सैनिकों द्वारा उनका नेतृत्व स्वीकार करने जैसे सवालों से परे रह कर महिला वीरांगनाएं अपनी वीरता और युद्ध कौशल से हर किसी को हतप्रभ करती रहीं और अपने अदम्य साहस की मिसाल पेश करती रहीं तो क्या आज की महिलाओं में उस साहस या कौशल की कोई कमी है? अगर नहीं तो फिर क्यों उनका नेतृत्व स्वीकारने या मातृत्व अवकाश जैसी बातों को बेवजह तूल दिया जाता है?

एक सवाल यह भी उठाया जाता रहा है कि अगर युद्ध के दौरान महिला सैनिक दुश्मन सेना की गिरफ्त में आ जाएं तो उनके साथ बहुत बुरा व्यवहार हो सकता है। युद्धबंदियों के संरक्षण के लिए वियना सम्मेलन और कुछ अन्य अंतरराष्ट्रीय कानून अस्तित्व में हैं। इस तरह के सवालों या दलीलों के बीच अगर हम देखें तो दूसरे देशों की सेनाओं में महिला सैनिकों का पर्याप्त संख्या बल है। अमेरिका तो अपनी महिला सैनिकों को युद्ध के मोर्चे पर भी भेजता है, जहां वे शहीद भी होती हैं और कभी-कभार युद्धबंदी भी बनाई जाती हैं। मगर इसे लेकर वहां कभी इस प्रकार की मानसिकता या दलीलें देखने-सुनने को नहीं मिलीं। दरअसल, भारत को एक आधुनिक राष्ट्र के रूप में विकसित करने के लिए हमें महिलाओं के प्रति अपना दृष्टिकोण बदलना ही होगा।

यह तर्क भी दिया जाता है कि लड़ाकू भूमिकाओं में भर्ती के लिए महिलाएं सेना में अनिवार्य कठोर शर्तों को स्वीकार नहीं कर पाएंगी, क्योंकि महिलाओं के लिए वही मानक होंगे, जो लड़ाकू भूमिकाओं के लिए किसी आम सैनिक से अपेक्षित होते हैं। ऐसे तर्क देते समय हम यह भूल जाते हैं कि एक ओर जहां भारतीय वायुसेना में महिलाएं लड़ाकू पायलट बन चुकी हैं, वहीं सीमा सुरक्षा बल का महिला दस्ता पूरी जांबाजी के साथ देश की सीमाओं की चौकसी कर रहा है। आज अगर महिलाएं लड़ाकू विमानों से मिसाइलें गिरा सकती हैं तो उनमें बंदूक, तोप और टैंक चलाने की भी पूरी सामर्थ्य है। जरूरत है देश की बहादुर बेटियों को सेना के द्वार खोल कर अवसर प्रदान करने की। अगर देश की बेटियां सेना में भर्ती होने के तमाम जोखिम और परेशानियों को जानते-समझते हुए इसका हिस्सा बनने का जज्बा रखती हैं तो उन्हें इसका अवसर मिलना ही चाहिए।

नाकामी का डर

सुधीर कुमार

देश में हर साल विभिन्न स्तरों पर बोर्ड परीक्षाएं आयोजित की जाती हैं। परीक्षाएं विद्यार्थियों की क्षमता और परिश्रम का मूल्यांकन करने के अलावा अगली कक्षा में जाने का मार्ग भी प्रशस्त करती हैं। परीक्षा-परिणाम के बाद जहां अच्छे अंक लाने वाले विद्यार्थी नामांकन के लिए विभिन्न कॉलेजों और विश्वविद्यालयों का रुख करते हैं, वहीं अच्छा प्रदर्शन नहीं करने वाले विद्यार्थी तनाव और अवसाद की गिरफ्त में चले जाते हैं। दुखद यह है कि पारिवारिक सहयोग न मिलने और हीनता की भावना उत्पन्न होने की वजह से कुछ विद्यार्थी जाने-अनजाने आत्महत्या कर बैठते हैं। यह चिंता का विषय है कि आखिर क्यों नंबर कम आने की वजह से कुछ बच्चे आगे संघर्ष कर जीवन को बेहतर बनाने के बजाय जीवन को खत्म करने पर उतारू हो जाते हैं?

दरअसल, अपनी आगे की पढ़ाई के लिए पसंदीदा विषय के चुनाव के साथ अच्छे कॉलेजों में नामांकन की एक बड़ी शर्त बेहतर रिजल्ट का होना होता है। इसलिए परीक्षा परिणाम के साथ विद्यार्थियों की ढेर सारी उम्मीदें जुड़ी होती हैं। ऐसे में जिनका रिजल्ट किसी कारणवश बढ़िया नहीं हो पाता है, वे सामाजिक अपमान के डर और मन में हीन भावना के विकास की वजह से खुद को नुकसान पहुंचाने का प्रयास करते हैं या फिर नकारात्मकता की वजह से आत्मविश्वास खो बैठते हैं।

परीक्षा में विफल रहे कुछ विद्यार्थियों के लिए यह वक्त मुश्किल भरा होता है, लिहाजा अभिभावकों से आशा की जाती है कि वे अपने बच्चों का हौसला बढ़ाते रहें। उन्हें समझाएं कि परीक्षा में सफल या असफल होना एक सामान्य स्थिति है। किसी परीक्षा में कम अंक आना या फेल हो जाना अपराध नहीं होता। पूरी जिंदगी हमें नए मौके मिलते रहते हैं। एक वर्ष के इम्तिहान में परिणाम के खराब होने का मतलब जिंदगी बर्बाद होना कतई नहीं होता!

दुनिया मेरे आगे

हालांकि यह सच्चाई है कि जिन परिवारों में लोग अपने बच्चों पर अधिक अंक लाने का दबाव बनाते हैं, वहां अगर किसी कारणवश बच्चों के अच्छे अंक नहीं आते हैं, तो अभिभावकों का उनके प्रति व्यवहार काफी कठोर हो जाता है। पारिवारिक सहयोग न मिलने की वजह से कुछ बच्चे अंदर से टूट जाते हैं। ऐसी स्थिति में आगे की कक्षाओं के लिए खुद को तैयार करने में विद्यार्थियों को काफी कठिनाई होती है। बेशक ऐसे वक्त में यह काम थोड़ा मुश्किल होता है, लेकिन व्यक्ति अगर अपनी काबिलियत पर भरोसा करे तो सफलता के मार्ग पर दस्तक देने वाली ऐसी समस्याओं से निपटना आसान हो जाता है। सफलता से अधिक हम अपनी विफलता से सीखते हैं। विफलता सिर्फ इस बात का संकेतक होती है कि हमारे परिश्रम में कुछ कमी रह गई। अगर समय रहते उन कमियों को सुधार लिया जाए तो अगले इम्तिहान में सफलता हासिल करना निश्चित हो जाता है।

इतिहास में ऐसे अनेक दृष्टांत मौजूद हैं, जिनमें हम देखते हैं कि विफलता के बाद आलोचनाएं सुनने और हार कर बैठने के बजाय कुछ लोगों ने अपनी क्षमता पर विश्वास करके इतिहास में अपना नाम स्वर्णिम अक्षरों से दर्ज कराने में कामयाबी हासिल की। थॉमस एल्वा एडिसन का नाम दुनिया भर में बल्ब के आविष्कारक के तौर पर जाना जाता है। 1878 में आविष्कृत बल्ब आज हमारी जिंदगी का अभिन्न हिस्सा बन चुका है। मानव समाज को बल्ब का उपहार देकर विश्व में 'प्रकाश क्रांति' की मशाल जलाने वाले एडिसन के बारे में बहुत कम लोग जानते हैं कि बल्ब बनाने के क्रम में वे हजार बार विफल रहे थे। अपनी विफलता के बारे में उन्होंने कहा कि 'मैं कभी नाकाम नहीं हुआ, बल्कि मैंने दस हजार ऐसे रास्ते निकाल लिए जो मेरे काम नहीं आ सके।' अपने संघर्ष के दिनों में अपने परिवार और समाज से काफी आलोचनाएं भी सुनीं, लेकिन उनके मजबूत इरादों के सामने आलोचनाएं प्राणहीन साबित हुईं।

महज पैंतीस वर्ष की आयु में फ्रांस की गद्दी पर बैठने वाले नेपोलियन बोनापार्ट ने कहा था- 'मेरे लिए कोई भी कार्य असंभव नहीं है, यह और बात है कि मैंने उस कार्य को करने का प्रयास ही नहीं किया।' दरअसल, किसी काम के प्रति हमारा प्रयास ही सफलता या विफलता की आधारशिला रखता है। प्रयास अगर सही दिशा में हों तो परिणाम सकारात्मक आते हैं। बेमन से किया गया प्रयास निरर्थक और निराशाजनक परिणाम देता है।

परीक्षा एक माध्यम होती है, जिससे हम साल भर की अपनी पढ़ाई, ज्ञान और याददाश्त को परखते हैं। साल भर हमने कितनी ईमानदारी और मेहनत से पढ़ाई की है, वह एक दर्पण की भांति परीक्षा-परिणामों में नजर आता है। कम नंबर लाने का अर्थ यह नहीं है कि ऐसे विद्यार्थी के भीतर प्रतिभा की कमी है। दरअसल, यह संभलने का एक सुअवसर है, जहां से अधिक मेहनत कर अपने सुनहरे भविष्य के निर्माण की ओर कदम बढ़ाया जा सकता है। इसलिए निराशा के भंवर में फंसने के बजाय दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ अगली परीक्षा की तैयारी पर ध्यान केंद्रित करना ही श्रेयस्कर है। हमारा प्रयास ही हमें चुनौतियों से लड़ने के लिए तैयार करता है।

चुनाव के बहाने

आचार संहिता के दौरान चुनाव कार्यों में व्यस्तता के नाम पर जिला प्रशासन के कर्मचारियों-अधिकारियों द्वारा आम जनता से संबंधित रोजमर्रा के कार्यों के प्रति उदासीनतापूर्ण रवैये या टालमटोल की खबरें आम हो गई हैं। यह उदासीनता व लापरवाही उस समय चरम पर पहुंच जाती है जब मतदान संपन्न करा कर मतगणना की तिथि की प्रतीक्षा की जा रही होती है। जब आचार संहिता जारी रहती है तब राज्य का राजनीतिक नेतृत्व और विधायिका के हाथ लगभग बंधे होते हैं। मंत्री और जनप्रतिनिधि अधिकारियों पर किसी प्रकार का अंकुश लगाने की स्थिति में नहीं होते। इस काल खंड में सारे अधिकारी-कर्मचारी पहले से अधिक निरकुंश हो जाते हैं। इस वजह से कार्यालयों में अघोषित अवकाश जैसे हालात बने रहते हैं। देखा जाता है कि अधिकारी स्वयं अनधिकृत तौर पर अनुपस्थित रहते या देर से कार्यालय आते हैं। लिहाजा, मातहत कर्मचारियों से अनुशासन की अपेक्षा बेमानी है।

ऐसे में यदि कोई जागरूक पत्रकार इस बाबत समाचार प्रकाशित कर दे तो वरिष्ठ अधिकारी आनन-फानन में औचक निरीक्षण की औचरिकता निभाते दिखाई देते हैं। इस कथित स्वप्रचारित औचक निरीक्षण के दौरान भी अधिकारीगण अपने लापरवाह मातहतों का बचाव करते पाए जाते हैं। ऐसा नहीं है कि उच्चपदस्थ नौकरशाही केवल आचार संहिता के दौरान ऐसा उद्दंड व्यवहार करती हो बल्कि उसका मनमाना रवैया साल भर देखने को मिलता है। प्रायः देखा जाता है कि ज्यादातर जिला स्तर के अधिकारियों द्वारा स्थानीय जनप्रतिनिधियों को घंटों इंतजार कराया जाता है। जिले के अंदरूनी इलाकों के दौरे पर जाने वाले जनप्रतिनिधियों को उस दर्जे की सुविधाएं नहीं मिल पातीं जितनी नौकरशाहों को स्थानीय सरकारी कर्मचारियों द्वारा उपलब्ध कराई जाती हैं। शासकीय अतिथि गृहों के कमरे की बुकिंग तक में नौकरशाहों और उनके परिजनों को प्राथमिकता दिए जाने की घटनाएं सामने आती रहती हैं।

इसके चलते ग्राम पंचायत के प्रतिनिधियों की हालत नौकरशाहों के सामने बेहद दयनीय हो जाती है। अपने अधिकारों से अनभिज्ञ पंच सरपंच पूरी तरह नौकरशाहों की कृपा पर निर्भर देखे जाते हैं। कभी-कभी उनके साथ अधिकारियों द्वारा शिष्टतापूर्ण व्यावहार भी नहीं किए जाने की शिकायतें सामने आती हैं। पंचायती राज अधिनियम के कुछ प्रावधान भी ग्राम पंचायत के प्रतिनिधियों को नौकरशाहों पर निर्भर बनाते हैं। ऐसे प्रावधानों में जरूरी संशोधन किए जाने की जरूरत है। नौकरशाहों को अपनी जिम्मेदारी और भूमिका समझनी होगी। अनुशासन की याद दिलाने और जनता के प्रति संवेदनशीलता का व्यवहार सिखाने के लिए प्रशासनिक अकादमियों में उच्चाधिकारियों के लिए बीच-बीच में विशेष सत्र आयोजित किए जाएं ताकि इनका व्यवहार मातहत कर्मचारियों के लिए आदर्श बने और सुशासन का रूप निखर कर सामने आए जिससे जनता लाभान्वित हो।

● *ऋषभ देव पांडेय, कोरबा, छत्तीसगढ़*

दूसरी पारी

क्षेत्रीय दलों में तृणमूल कांग्रेस ने अभिनेत्री और मॉडल नुसरत जहां और मिमी चक्रवर्ती को चुनाव लड़ने का मौका दिया है। दमदार एक्टर प्रकाश राज कर्नाटक की बंगलुरु सेंट्रल लोकसभा सीट से निर्दलीय चुनाव लड़ रहे हैं। राजनीति में अब वही सितारे आ रहे हैं, जो अपने क्षेत्र में ढलान पर होते हैं। सनी देओल से लेकर उर्मिला मातोंडकर, गौतम गंभीर और विजेंद्र तक का हाल ऐसा ही है। जाहिर है, राजनीति इनके लिए करियर की दूसरी पारी जैसी है, जहां इन्हें बड़ी आसानी से प्रवेश मिल जाता है। लेकिन हाल में जितने भी सितारे संसद पहुंचे, बतौर सांसद उनके प्रदर्शन में ऐसा कुछ भी नहीं दिखा, जिससे नए सितारों के राजनीति में आने से कोई उम्मीद पैदा होती हो। कुल मिलाकर इनकी भूमिका चुनाव में किसी पार्टी को थोड़ा और प्रचार दिलाने तक सीमित रहती है।

● *हेमंत कुमार, ग्राम-गोराडीह, भागलपुर, बिहार*

किसी भी मुद्दे या लेख पर अपनी राय हमें भेजें। हमारा पता है : ए-8, सेक्टर-7, नोएडा 201301, जिला : गौतमबुद्धनगर, उत्तर प्रदेश

आप चाहें तो अपनी बात ईमेल के जरिए भी हम तक पहुंचा सकते हैं। आइडी है : chaupal.jansatta@expressindia.com

गुड़ गोबर

राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता के कारण शब्दों के चयन में शिष्टाचार और पद की गरिमा भूल जाना कहां तक न्यायसंगत है! 'मिट्टी के रसगुल्लों में कंकड़' भर कर खिला कर दांत तोड़ने की बात कहना प्रधानमंत्री के अपमान से पहले यह उच्चारणकर्ता के बौद्धिक स्तर का परिचय दे देता है। प्रधानमंत्री ने कहा कि दीदी उन्हें नए-नए कुर्ते और बंगाली मिठाइयां भेजती रहती हैं। यह बयान धधकते चुनावी वातावरण में शीतल बयार जैसा था, लेकिन कंकड़ के रसगुल्लों ने सब गुड़-गोबर कर दिया!

सत्ता की चाह में इस तरह के बचकाने बयान देने से न केवल मतदाताओं पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा बल्कि उनके समर्थकों को भी लज्जापूर्ण स्थिति का अनुभव होगा। देखा जा रहा है कि हर चुनाव में प्रचार का स्तर निम्नतम होता जा रहा है। प्रत्याशी एक-दूसरे के विरुद्ध बिना सबूत के अनर्गल आरोप लगा रहे हैं। गाली-गलौच में नए-नए शब्दों का प्रचलन हो रहा है। आने वाले समय में हो सकता है कि प्रचार की कालावधि में उम्मीदवारों में गुत्थमगुत्था भी होने लगे और सिरफुटौवल की बारी आ जाये। तब नित्य ऐसे-ऐसे अप्रिय समाचार सुनने को मिल सकते हैं कि फलां सीट से फलां पार्टी के प्रत्याशी ने विरोधी पार्टी के प्रत्याशी के सिर पर पत्थर दे मारा जिसे उसे पचास टांके लगवाने पड़े या फलां ने फलां पर तेजाब से हमला कर दिया। बहुत चिंताजनक स्थिति होती जा रही है। ईश्वर ऐसे प्रचारकों और प्रत्याशियों को सद्बुद्धि दे दे जिससे लोकतंत्र की गरिमा बची रह जाए।

● *सतप्रकाश सनोठिया, रोहिणी, दिल्ली*

पाबंदी के बावजूद

मसूद अजहर को सिर्फ पुलवामा हमले के कारण संयुक्त राष्ट्र की वैश्विक आतंकवादियों की सूची में नहीं डाला गया है। दरअसल, भारत ने 2009 में ही मसूद अजहर पर प्रतिबंध लगाने संबंधी प्रस्ताव पेश किया था क्योंकि उसे मुंबई हमले के लिए भी जिम्मेदार माना जाता है। निश्चित तौर पर संयुक्त राष्ट्र का यह कदम स्वागत योग्य है लेकिन भारत को समझना होगा कि मुंबई हमले के जिम्मेदार हाफिज सईद को भी संयुक्त राष्ट्र ने आतंकी सूची में डाल रखा है फिर भी वह पाकिस्तान में भारत विरोधी भाषण देता रहता है। दिलचस्प बात तो यह है कि उसने इस सूची से अपना नाम हटाने की सिफारिश भी की थी। ऐसे में किसी संगठन को आतंकी सूची में डाल देने का क्या औचित्य बनता है? पाकिस्तान मसूद अजहर जैसे कई आतंकी संगठनों का वित्तपोषण करता है जबकि एफएटीएफ जैसी संस्था इस पर करवाई कर सकती है। वास्तविकता स्पष्ट है दिख रही है अब भारत को वैश्विक संगठनों पर निर्भरता के बजाय अपनी सुरक्षा के प्रति स्वयं जबावदेह होना पड़ेगा।

● *सोनू राज, मुखर्जीनगर, दिल्ली*

नई दिल्ली